विजन कुमार पाण्डेय

दूषित हवा पानी में टूटती सांसें

किसानों ने अधिक उपज लेने के लिए रासायनिक ऊर्वरकों खरपतवारनाशकों तथा कीटनाशकों आदि का उपयोग तेजी से बढ़ा दिया है। ये जल प्रदूषण को जन्म दे रहा है। इसके अलावा नगरीय कूड़े-कचरे, मल-मूत्र, प्लास्टिक और पॉलीथीन तथा विभिन्न उद्योगों के अवशिष्ट पदार्थों को नदियों तथा अन्य प्राकृतिक जलस्त्रोतों में बहा देने से भारी मात्रा में जल प्रदूषण पैदा होता है। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव न केवल उन जीवों पर पड़ता है जो जल के भीतर ही जीवनयापन करते हैं, अपितु इसका कुप्रभाव ग्रामीण जनस्वास्थ्य पर भी पड़ता है। ऐसे पदार्थ जिनके कारण जल के प्राकृतिक गुण-धर्म नष्ट हो जाते हैं, और वे जीवों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाते हैं, जल प्रदूषक कहलाते हैं। ये जल प्रदूषक कृषि, उद्योग तथा अन्य मानवीय क्रिया-कलापों के द्वारा उत्पन्न होते हैं। जल औद्योगिक अवशिष्ट के कारण सबसे अधिक प्रदूषित होता है। कीटनाशक, तेलशोधक, चर्म, रबर तथा प्लास्टिक, अल्कोहल, ऊर्वरक, कार्बनिक तथा अकार्बनिक रसायन तथा, खाद्य-प्रसंस्करण आदि उद्योग जल प्रदूषण के प्रमुख कारक हैं।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के हालिया अध्ययन में खुलासा हुआ है कि देश की 35 नदियां बुरी तरह प्रदूषण की चपेट में हैं। 2013 से 2015 के बीच आकंड़ों के आधार पर किए गए अध्ययन से पता चला है कि देश की 40 नदियों की प्रदूषण जांच में असम की एक और दक्षिण भारत की चार नदियां ही स्वच्छता के मानकों में खरी उतरी हैं। बाकी प्रदूषण की मार से बुरी तरह कराह रही हैं। वे अंतिम सांस ले रही हैं। दूसरी तरफ स्वच्छ भारत अभियान के लिए चयनित 576 शहरों में से एक लाख से अधिक आबादी वाले 476 शहरों के सर्वेक्षण का निष्कर्ष कुल मिलाकर निराश करने वाला है। इस सर्वेक्षण में स्वच्छता के लिहाज से दस प्रमुख शहरों में उत्तर भारत का कोई शहर न होना यही बताता है कि इस क्षेत्र के राज्य और उनके स्थानीय निकाय इस अभियान को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। सर्वेक्षण में स्वच्छता के मामले में सबसे खराब प्रदर्शन करने वाले शहरों में मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा के भी कई शहर हैं। स्वच्छ भारत होगा तभी हमारी नदियां भी स्वच्छ होंगी। यदि स्वच्छ भारत अभियान वांछित ढंग से आगे नहीं बढ़ता और आने वाले दिनों में अनुकूल नतीजे सामने नहीं आते तो यह एक तरह से मानव जीवन के लिए खतरे की घंटी है। निःसंदेह स्वच्छ भारत अभियान में आम जनता की भी भागीदारी आवश्यक है, लेकिन यह एक सीमा तक ही हो सकती है। जो आम नौकरी पेशा वाले लोग हैं उनसे तो अपने घर के आस-पास की सफाई की आशा की जा सकती है। स्कूलों और कॉलेजों में छात्रों द्वारा इस प्रोग्राम को चलाया जा सकता है। लेकिन यह प्रयास लगातार जारी रखने की जरूरत है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि किसी विशेष अवसर पर तो स्वच्छता अभियान चलाया जाता है लेकिन उसके बाद फिर ढिलाई होने लगती है।

केन्द्र सरकार ने भले ही गंगा की सफाई को लेकर राष्ट्रीय स्तर

पर अभियान चलाया हो लेकिन असलियत में देश की कई नदियां गंगा से भी बदतर हालत में हैं। दिल्ली से आगरा के बीच यमुना देश की सबसे मैली नदी है। सहारनपुर से लेकर गाजियाबाद के बीच हिंडन प्रदूषण के मामले में तीसरे नम्बर पर है। सीपीसीबी ने तीन साल तक देश की 290 नदियों में पानी की गुणवत्ता का विश्लेषण किया और पाया कि 12,363 किमी नदी क्षेत्र में से 8,500 किमी क्षेत्र इस कदर प्रदूषित है कि वहां जलीय पौधों और जीव जंतुओं तक का जीना दूभर है। सबसे दुखद बात यह है कि 1991 के मुकाबले देश की 290 नदियों का प्रदूषण स्तर दोगुना हो गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि शहरों से आने वाला कचरा ही नदियों में गंदगी की सबसे बड़ी वजह है। देश में ऐसी एक भी नदी नहीं है जो पूरी साफ-सुथरी हो। अभी देश में कुल 445 नदियां हैं जिनमें बी.ओ.डी. का स्तर 290 मापा गया है। दरअसल प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का खामियाज़ा सबसे ज्यादा नदियों को ही भुगतना पड़ा है। अकेले गंगा-यमुना को प्रदूषण मुक्त करने के लिए अब तक करीब 15 अरब रूपये खर्च किए जा चुके हैं। लेकिन हालत बद से बदतर बनी हुई है।

अब तो छठ के मौके पर डॉक्टर व्रतियों को यमुना में स्नान करने को मना करते हैं। गंगा और यमुना सदियों से करोड़ों लोगों के लिए जीवनदायनी की भूमिका निभाती रही हैं। कुछ सालों से सरकारी, गैर-सरकारी स्तर पर इन नदियों की रक्षा के लिए कुछ प्रयास प्रारंभ किए गए हैं। गंगा व यमुना एक्शन प्लान इसी उद्देश्य के लिए ही बनाए गए हैं। लेकिन इसमें भी सीमित सफलता मिली है। दिल्ली में जहां सरकार का प्रदूषण-नियंत्रण प्रयास सबसे अधिक केंद्रित रहा वहां भी अच्छे परिणाम नहीं मिले। सन् 2007 के सरकारी आंकड़ों के अनुसार सीवेज के उपचार की पूरे देश में जो कुल क्षमता स्थापित हुई थी, उसका 40 प्रतिशत हिस्सा दिल्ली में केंद्रित था। इससे हालत में कुछ सुधार आया है। लेकिन यमुना की रक्षा के वर्तमान प्रयास बहुत धीमी गति से हो रहे हैं। इसके लिए गंगा-यमुना व उनकी सहायक नदियों की रक्षा की समग्र योजना बननी चाहिए। केवल छुटपुट प्रयास से काम नहीं चलने वाला। इस समग्र योजना का आरंभ इन नदियों के हिमालय में उद्गम व जल ग्रहण क्षेत्र से ही हो जाना चाहिए। वहां प्राकृतिक वनों की रक्षा करने, वृक्षों व चरागाहों की हरियाली बढ़ाने, भूमिजल संरक्षण कार्यों से नदी में जल की स्थिरता बढ़ेगी। पर्वतीय क्षेत्र से बाहर आने पर अब गंगा-यमुना का पानी विभिन्न नहरों की ओर मोड़ा जाता है तो उस समय यह ध्यान में रखना जरूरी है कि इन नदियों के प्राकृतिक प्रवाह क्षेत्र के लिए पर्याप्त जल छोड़ा जाए। कोई भी नदी तभी बचेगी जब उसका प्राकृतिक प्रवाह बने रहने की योग्यता का जल उसमें मौजूद हो। पहले के प्रदूषण नियंत्रण प्रयासों की विफलता को देखते हुए इस क्षेत्र में नई सोच व प्रयोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए। दरअसल प्रयास यह करना चाहिए कि गंदगी का सिर्फ उपचार ही न हो बल्कि इसे नदी में बहने से भी रोक दिया जाए। गंगा-यमुना व उनकी सहायक नदियों की रक्षा के प्रयासों को एक जन-अभियान या हो सके तो एक जन-आंदोलन का रूप देना चाहिए। नदियों की रक्षा के लिए नदियों के आस-पास रहने वाले लोगों को भी इससे जोड़ना जरूरी है। जीवनदायनी गंगा को साफ करने के लिए अब तक करोड़ों रूपए खर्च किए जा चुके हैं। संतों, वैज्ञानिकों के साथ-साथ आम जनता गंगा को स्वच्छ करने की कोशिश में लगी हुई है, लेकिन गंगा आज भी मैली की मैली ही है। गंगा का पानी पीने लायक छोड़िए, नहाने और खेती करने लायक भी नहीं बचा है। गंगा को बचाने की कोशिशें नाकाफी रही हैं। पहाड़ों से निकल कर गंगा मैदान की तरफ बहती है। इसका पहला पड़ाव हरिद्वार है। हरिद्वार धार्मिक नगरी तो है ही लेकिन गंगा को गंदा करने की पहली बदनामी भी यही शहर उठाता आया है। इसलिए इस शहर पर भी विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

गांवों का भी जल प्रदूषित

गांवों का भी जल प्रदूषित हो गया है। किसानों ने अधिक उपज लेने के लिए रासायनिक ऊर्वरकों खरपतवारनाशकों तथा कीटनाशकों आदि का उपयोग तेजी से बढ़ा दिया है। ये जल प्रदूषण को जन्म दे रहा है। इसके अलावा नगरीय कूड़े-कचरे, मल-मूत्र, प्लास्टिक और पॉलीथीन तथा विभिन्न उद्योगों के अवशिष्ट पदार्थों को नदियों तथा अन्य प्राकृतिक जलस्त्रोतों में बहा देने से भारी मात्रा में जल प्रदूषण पैदा होता है। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव न केवल उन जीवों पर पड़ता है जो जल के भीतर ही जीवनयापन करते हैं, अपितु इसका कुप्रभाव ग्रामीण जनस्वास्थ्य पर भी पड़ता है। ऐसे पदार्थ जिनके कारण जल के प्राकृतिक गुण-धर्म नष्ट हो जाते हैं, और वे जीवों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाते हैं, जल प्रदूषक कहलाते हैं। ये जल प्रदूषक कृषि, उद्योग तथा अन्य मानवीय क्रिया-कलापों के द्वारा उत्पन्न होते हैं। जल औद्योगिक अवशिष्ट के कारण सबसे अधिक प्रदूषित होता है। कीटनाशक, तेलशोधक, चर्म, रबर तथा प्लास्टिक, अल्कोहल, ऊर्वरक, कार्बनिक तथा अकार्बनिक रसायन तथा, खाद्य-प्रसंस्करण आदि उद्योग जल प्रदूषण के प्रमुख कारक हैं। इसके अलावा मलमूत्र, प्लास्टिक तथा पॉलीथीन कचरा, भारी धातुएं आदि भी प्रमुख जल प्रदूषक हैं। किसान कृषि कार्यों हेतु जल का दोहन भूमिगत स्त्रोतों से करता है। अभी तक तो हम जल स्त्रोतों को शुद्ध मान रहे थे लेकिन हाल के वर्षों में भूमिगत जल में कार्बनिक रसायनों, भारी धातुओं और अन्य प्रदूषकों ने वहां भी अपना घर बना लिया है।

शहरों में सीवर लाइनों का जाल-सा बिछा हुआ है जिनकी सहायता से मलमूत्र को नदियों आदि में छोड़ा जाता है। कई बार इन सीवरों में रिसाव होता रहता है जिस कारण मलमूत्र रिस-रिसकर भूमिगत जलस्त्रोतों तक पहुंचता रहता है। इसी तरह औद्योगिक अवशिष्ट आदि भी मिट्टी की केशनलिकाओं के द्वारा भूमिगत जलस्त्रोतों तक पहुंचता रहता है। इससे गांव का जल और प्रदूषित हो जाता है। गांवों में पेयजल मुख्यतः जलस्त्रोतों से ही प्राप्त किया जाता है। शहरों में तो इस भूमिगत जल को साफ, उपचारित और क्लोरीनीकृत करके इसका लोग उपयोग करते हैं। लेकिन गांव के लोग ऐसा नहीं

नदियों में प्रदूषण इस कदर बढ़ गया है कि इससे जलीय पौधों के जीवन पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है

करते। वे इसे सीधे ही पी जाते हैं। इस कारण भूमिगत जल प्रदूषण का सर्वाधिक बुरा प्रभाव ग्रामीणों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। गांवों में पेयजल प्राप्त करने के प्रमुख साधन हैडपम्प या कुएं होते हैं जो प्रदूषित भूमिगत जल को ही हमारे रसोईघर में पहुंचा देते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि गांवों में भी पेयजल को साफ करके ही पीया जाए। दरअसल भूमिगत जल प्रदूषण का सबसे बड़ा खतरा यह है कि यह स्वतः शुद्ध नहीं हो जाता। अगर भूमिगत जल एक बार प्रदूषित हो गया तो उसे प्रदूषण रहित बनाना असंभव है। अतः भूमिगत जल का प्रयोग पेयजल के रूप में करने से पहले उसे स्वच्छ और शुद्ध अवश्य बना लेना चाहिए।

जंगलों के विनाश के कारण भू-क्षरण में तेजी आयी है और यदि यही स्थिति रही तो अगले 20 सालों में एक तिहाई कृषि भूमि नष्ट हो सकती है

फ्लोराइड और नाइट्रेट ये ऐसे पदार्थ हैं जिसकी हमारे शरीर को बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। लेकिन यदि इसकी मात्रा थोड़ी, सी भी अधिक हो जाए तो यह स्वास्थ्य के लिए बड़ा खतरा बन जाता है। इसमें फ्लोराइड मृदा, जल, सब्जी, समुद्री जल, वायु, पशुओं और मनुष्यों की मांस पेशियों में पाया जाता है। प्रदूषित भूमिगत जल में इसकी मात्रा काफी अधिक होती है। हमारे शरीर में यह मांस, सब्जियों और भूमिगत जल द्वारा पहुंचता है। यदि यह शरीर में ज्यादा हो जाता है तो फ्लोरोसिस जैसा खतरनाक रोग हो जाता है। दांतों की ऊपरी परत को एनामेल कहते हैं। इसका निर्माण फ्लोराइड ही करता है। लेकिन अगर इसकी मात्रा एक पीपीएम से अधिक हो जाए तो यह शरीर के लिए हानिकारक होता है। नाइट्रेट की अधिक मात्रा भी हमारे शरीर के लिए हानिकारक है। यह नाइट्रोजन का योगिक होता है। नाइट्रोजन का कुछ भाग तो पौधों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और बाकी भाग जल में घुलकर मिट्टी की केशनलिकाओं की सहायता से भूमिगत जल तक पहुंच जाता है। सड़े-गले पौधों, पशुओं के अवशेष, मृत शरीर, नाइट्रेटयुक्त उर्वरकों और मलमूत्र का नाइट्रेट भी वर्षा जल में घुलकर रिसते-रिसते भूमिगत जल तक पहुंच जाता है। जब इस भूमिगत जल का उपयोग ग्रामीण करते हैं तो उन्हें कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। नाइट्रेट की अधिक मात्रा से छोटे बच्चों में साइनोसिस नामक रोग हो जाता है। इस रोग में बच्चों की त्वचा नीली पड़ जाती है। इसलिए इसे बच्चों का 'नीला रोग' भी कहते हैं। पशुओं में भी इस रोग के होने की प्रबल आशंका होती है। जिसके कारण दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में अन्यधिक कमी आ जाती है और गायों का गर्भपात हो जाता है। नाइट्रेट, जीव-जंतुओं के शरीर में क्रिया करके नाइट्रोसामी नामक विषैला यौगिक बनाता है जो कैंसर जनक होता है। उपर्युक्त व्याधियों से बचने का एक मात्र तरीका यही है कि नाइट्रेट प्रदूषण रहित जल का ही सेवन करें। यहां उल्लेखनीय है कि जल से नाइट्रेट की मात्रा को उसे उबाल कर दूर नहीं किया जा सकता। इस अशुद्धि को दूर करने के लिए जल का आसवन करना जरूरी है। मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ प्रदूषित जल का दुष्प्रभाव पेड़-पौधों पर भी पड़ता है। इसलिए यदि प्रदूषित जल से सिंचाई की जाए तो यह उपज के लिए भी नुकसान दायक होता है। इसलिए किसानों को चाहिए कि प्रदूषित जल से सिंचाई भी न करे वरना उससे हमारे अनाज भी दूषित हो जाएगें, जिसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ेगा।

वायु भी प्रदूषित हो रही

चाहे वह कारों से निकलने वाला धुआं हो या लकड़ी या गोबर से जलने वाला चूल्हा, वायु प्रदूषण की वजह से विश्व भर में 2012 में 70 लाख लोगों की मृत्यु हुई है। यह आंकड़ा विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जारी किया है। इन मौतों में एक-तिहाई मौते तेजी से विकसत हो रहे एशियाई देशों में हुई। यहां हृदय और फेफड़े संबंधी रोग काफी तेजी से पसर रहे हैं। आज दुनिया में होने वाली हर आठ में से एक मौत दूषित हवा की वजह से होती है। विडंबना यह है कि हृदयघात और मानसिक आघात में वायु प्रदूषण कितनी बड़ी भूमिका निभाता है, इसकी जानकारी होने के बावजूद इसे रोकने की कोई गंभीर पहल नहीं हो रही। आज जापान और चीन से लेकर एशिया का एक बड़ा हिस्सा असुरक्षित है। दरअसल यह गांव की गरीब औरतों पर बड़ा खतरा मंडरा रहा है। चूल्हे की आग से धुएं से निकलने वाली गैसें उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल रही हैं। अभी 2012 में घर से निकलने वाले वायु प्रदूषक ने 40 लाख से अधिक लोगों को अपना शिकार बनाया। बाहरी जहरीली हवा से 30 लाख से अधिक लोगों की मौत हुई। चीन में हो रहे अंधाधुंध शहरीकरण की वजह से वायु प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है। जिसका असर पड़ोसियो पर भी पड़ रहा है। हाल में विश्व बैंक की भी एक रिपोर्ट जारी हुई है जिसमें कहा गया है कि चीन शहरीकरण को लेकर संजीदगी दिखा रहा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि सघन आबादी वाले शहरों के अलावा देश के कई शहरों में बेहतर योजना के नाम पर बेमतलब विस्तार की अनुमति दी गई है। विश्व बैंक का आकलन है कि अगले 15 सालों में चीन शहरी बुनियादी ढांचों पर 50.3 अरब अमेरिकी डॉलर खर्च करेगा, क्योंकि उसकी योजना 10 करोड़ किसानों को शहरों में बसाने की है। यह विस्तार चीन में समय पूर्व मृत्यु, जन्म दोष और अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं बढ़ाएगा, जिसके निदान के लिए उस पर सालाना 300 अरब अमेरिकी डॉलर के अतिरिक्त खर्च का बोझ बढ़ेगा। भारत में भी स्वास्थ्य एजेंसियों

वाहनों से निकलने वाला धुआं मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है

का आकलन है करीब 70 करोड़ लोग कृषि अपशिष्ट जैसे बायोमास ईंधन का इस्तेमाल घरों में करते हैं। घरेलू चूल्हे से होने वाले प्रदूषण एक घंटे में 400 सिगरेट के जलने के बराबर होता है। भारतीय महिलाओं और लड़कियों के लिए आज भी घरेलू वायु प्रदूषण सबसे बड़ा स्वास्थ्य खतरा है। बहरहाल, धुंध से जूझ रहा चीन आज जब प्रदूषण के खिलाफ जंग की बात करता है, तो क्या ऐसी ही कोई पहल भारत में नहीं होनी चाहिए? इसके लिए जमीनी स्तर पर भी सामूहिक प्रयास की जरूरत है। आखिर जो वायु हम दूषित कर रहे हैं, उसे ही तो श्वांस के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं।

कोयले की कालिख से दूर हटना होगा

प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है। यह हमारी सांसों को कम कर रहा है। पवन ऊर्जा भी एक अच्छा वैकल्पिक स्त्रोत है। इससे पर्यावरण को भी फायदा होगा। देश में 2005 से 2013 के बीच सल्फर डायऑक्साइड का उत्सर्जन 60 फीसदी बढ़ा है। SO_2 के उत्सर्जन के मामले में भारत अमेरिका को पीछे छोड़ चुका है। चीन के बाद भारत इस दूषित गैस का दूसरा बड़ा उत्सर्जक है। इसके चलते अम्लीय वर्षा और सांस संबंधी बीमारियां देश में बढ़ रही हैं। इसलिए भारत को कोयले के रास्ते से जल्द ही हटना होगा। वरना इसके गंभीर परिणाम पूरे भारतवासियों को भुगतने पड़ेंगे। अभी अबु धाबी में भविष्य की टिकाऊ ऊर्जा पर शिखर बैठक हुई है। इसमें सौर ऊर्जा, बैट्री से कार और पवन चक्कियों से टिकाऊ ऊर्जा प्राप्त करने पर जोर दिया गया। अरब क्षेत्र में आबु धाबी तेजी से वैकल्पिक ऊर्जा पर काफी धन खर्च कर रहा है। आबू धाबी अंतरराष्ट्रीय अक्षय ऊर्जा एजेंसी (इरेना) का मुख्यालय भी है। यह तेल और प्राकृतिक गैसों का गढ़ है। आबू धाबी विकास कोष से हर साल करीब 5 करोड़ डॉलर अक्षय ऊर्जा के विकास में खर्च करेगा। इससे 2020 तक दोबारा इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा का प्रयोग सात प्रतिशत बढ़ जाएगा। आज भी दुनिया की करीब आधी आबादी खाना बनाने के लिए कोयले का इस्तेमाल करती है। यह लोगों के स्वास्थ्य, पर्यावरण और महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल रहा है। गांवों में अभी भी महिलायें कोयले पर खाना बनाती हैं। जिसका बुरा असर उनके पूरे परिवार पर पड़ रहा है। केवल भारत ही नहीं अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के देशों में भी गरीब धुएं से भरे स्याह कमरों में कोयले, लकड़ी या गोबर की आंच पर रोटी सेकते हैं। इससे गरीब अपना पेट तो जरूर भर लेता है लेकिन बीमारियों का शिकार भी हो जाता है। इससे पर्यावरण को जो नुकसान होता है वो अलग। ऐसा अनुमान है कि प्रदूषण फैलाने वाले चूल्हे हर वर्ष संसार में करीब 40 लाख लोगों की मौत का कारण बनते हैं। घरों के अंदर बने पारंपरिक चूल्हे से निकला जहरीला धुआं कार्बन कणों से कमरा भर देता है। ऐसे प्रदूषित वातावरण में लगातार रहना निमोनिया, फैफड़े की बीमारियों, कैंसर, और दिल की बीमारियों का शिकार बनाता है। पारंपरिक चूल्हे बहुत बेकार होते हैं। इसमें थोड़ा खाना बनाने के लिए बहुत ज्यादा ईंधन की जरूरत पड़ती है। इसकी वजह से जंगलों पर दबाव बढ़ता है। बहुत सारे पेड़ इसलिए काटे जाते हैं कि घरों में चूल्हा जल सके। हर रोज करीब 32 लाख टन से ज्यादा जंगल की लकड़ी खाना बनाने के लिए जला दी जाती है। इससे भारी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड पर्यावरण में पहुंचता है। वातावरण में इसी कारण बदलाव आ रहा है। ऐसा अनुमान है कि भारत में करीब 83 करोड़ लोग इस तरह के पुराने चूल्हों पर निर्भर हैं। जिनमें ईंधन के रूप में लकड़ी या कोयले का इस्तेमाल होता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी उपग्रहों के माध्यम से दुनिया भर के जंगलों के छायाचित्र लेकर एक रिपोर्ट तैयार की है। इसमें बताया गया है कि देश में केवल आठ प्रतिशत भू-भाग ही वनाच्छादित रह गया है। इस रिपोर्ट के मुताबिक करीब 3290 लाख हेक्टेयर में फैले भू-क्षेत्र में 1989 तक 19.5 भू-भाग में जंगल थे। जिनकी कटाई 15 लाख हेक्टेयर प्रति वर्ष की दर से जारी रही, फलस्वरूप ये वन घटकर केवल आठ फीसदी रह गए। दस साल पहले देश में कुल 7.83 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में वन थे जो अब घटकर 24 फीसदी शेष बचे हैं। इनका विनाश विकास के बहाने औद्योगिकरण की भेंट चढ़ गया। इस रिपोर्ट के अनुसार बीते दो साल के भीतर ही 365 वर्ग किमी वन क्षेत्र नष्ट हो गया। इसके चलते देश के कुल क्षेत्रफल में जंगल और पेड़ों की मौजूदगी घटकर 23.80 फीसदी रह गई है। जिसे 33 फीसदी होनी चाहिए थी। ऐसे में जंगल से जुड़े 20 करोड़ लोगों की आजीविका पर संकट के बादल गहरा गए हैं। औद्योगिक विकास के चलते पहले भी करीब 4 करोड़ वनवासियों को विस्थापित किया जा चुका है। अब उनकी जिंदगी राम भरोसे चल रही है। वनों की कटाई केवल हमारे देश में ही नहीं हो रही। पूरी दुनिया में जंगल उजड़ रहे हैं। ज्यादा धन कमाने की लालसा के कारण पूरी दुनिया में जंगलों का दायरा सिकुड़ रहा है। इंडोनेशिया में 12 हजार, ब्राजील में 18 हजार, कोलंबिया में 7 हजार, थाईलैण्ड में 6 हजार, जैरे में 4 हजार प्रति वर्ग किमी की दर से वनों का विनाश हो रहा है। अर्थात प्रति वर्ष 175 लाख हेक्टेयर की रफ्तार से वन लुप्त हो रहे हैं। अगर हालत यही रही तो 2040 तक 20 से 40 प्रतिशत तक घने वन मिट जाएंगे। ऐसे में कई दुर्लभ प्रजातियां भी नष्ट हो जाएंगी। अनेक वनस्पतियां नष्ट हो जाएंगी। इसका खामियाजा सबसे ज्यादा भारत को उठाना होगा। क्योंकि हमारे देश की जैव विविधता सबसे ज्यादा है। संसार में जितनी भी जैव विविधता है, उसमें 65 प्रतिशत दुर्लभ वन्य जीव और 7 प्रतिशत वनस्पतियों की धरोहर आज भी अकेले भारत में है। जंगलों के विनाश के कारण भू-क्षरण में भी तेजी आई है। दुनिया में 2600 करोड़ टन मिट्टी पृथ्वी की ऊपरी परत है, जो बरसात में जल धाराओं से कटाव आ जाने के कारण निरंतर समुद्र में समाती जा रही है। देश में भूक्षरण की रफ्तार 1200 करोड़ टन है। लिहाजा प्रति मिनट 5 हेक्टेयर भूमि का क्षरण हो रहा है। प्रत्येक बरसात में एक हेक्टेयर भूमि में से 16.40 टन मिट्टी बह जाती है। यदि इस दिशा में सुधार नहीं किया गया तो अगले 20 सालों में एक तिहाई कृषि भूमि नष्ट हो जाने की आशंका है। वर्तमान में अकेले भू-क्षरण के कारण प्रति वर्ष 2800 करोड़ रूपए का नुकसान हो रहा है।

ईंधन की विकराल समस्या

अभी भी गांवों में ईंधन की विकराल समस्या है। ईंधन के लिए वनों का विनाश किया जा रहा है। अगर वनों की कटाई इसी गति से होती रही तो 2025 तक जलाऊ लकड़ी की भीषण समस्या पैदा हो जाएगी। इस समय देश में हर साल 33 करोड़ टन लकड़ी के ईंधन की जरूरत पड़ती है। जिसे मौजूदा वनों की स्थिति को देखते हुए कदापि पूरा नहीं किया जा सकता। हमारे गांव के लोग लकड़ी के ईंधन पर आज भी निर्भर हैं। इसका कोई ठोस विकल्प भी नजर नहीं आ रहा। ग्रामीणों के लिए इस समय ईंधन की तीन सुविधाएं उपलब्ध हैं। लकड़ी, गोबर के कंडे और कैरोसिन। अगर

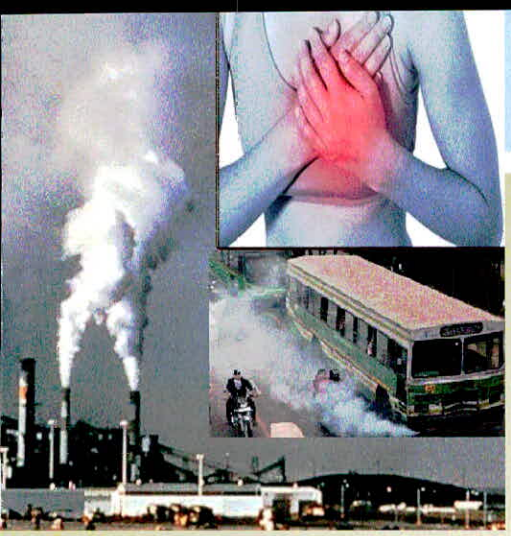

फैक्ट्रियों और गाड़ियों से निकलने वाला धुआं हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रहा है

सौर चूल्हे का विस्तार हो जाए तो यह समस्या हल हो सकती है। सच्चाई तो यह है कि रसोई गैस प्रणाली और सौर ऊर्जा का विस्तार अभी तक हमारे गांवों में नहीं हो पाया है। ये अभी भी ईंधन के आंशिक विकल्प नहीं बन पाए हैं। यदि भविष्य में कैरोसिन, रसोई गैस और सौर चूल्हे की आपूर्ति पर्याप्त नहीं होती है तो पर्यावरणीय असंतुलन के हालात और भयावह होंगे। ईंधन की समस्या कैसे हल हो इसके लिए वन मंत्रालय ने 1990-91 में एक योजना तैयार की थी। इसके तहत लकड़ी की खपत को पूरा करने के लिए आने वाले बारह सालों में व्यापक स्तर पर वन रोपण की योजना थी। मगर अन्य योजनाओं की तरह यह भी कागजी साबित हुई। समस्या सुलझने के बजाय और विकराल हो गयी। हमें अपने पड़ोसी देश नेपाल को देखना चाहिए। नेपाल में एक शांत क्रांति हो रही है। लोग धीरे-धीरे लकड़ी को जलाने की बजाए ग्रीन और साफ सुथरे ईंधन की ओर बढ़ रहे हैं। बायोगैस उनके घर का अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा है। हालांकि अभी यह भी गरीब परिवारों के लिए एक महंगा सपना है। नेपाल के घने जंगल में लकड़ियों की तलाश एक थका देने वाला काम होता है। इस गर्मी में लकड़ियां चुनने का काम आसान नहीं है। इसमें कई घंटे लगते हैं। साल भर खाना बनाने के लिए कम से कम पांच टन लकड़ी लगती है। वैसे भी जंगल में लकड़ियां चुनना आसान नहीं क्योंकि इसके लिए खास इजाजत लेनी होती है। अगर कोई बिना इजाजत के लकड़ियां चुनते पकड़ा गया तो जुर्माना भी होता है। भारत में भी जंगल आदिम जातियों की जीविका के प्रमुख साधन हैं। ये जंगल राष्ट्र की अद्वितीय व अटूट प्राकृतिक संपदा हैं। लेकिन अब ये भी तेजी से लुप्त हो रहे हैं। हमारे वन विभाग का दावा है कि भारत में कुल भू-भाग के 19 प्रतिशत में जंगल हैं। लेकिन किए गये सर्वेक्षण से पता चला है कि पिछले 10 साल में 3000 वर्ग किमी जंगलों का सफाया हो चुका है। अगर यही रफ्तार जारी रही तो अगले 50 साल में करीब दो तिहाई जंगल नष्ट हो जाएंगे।

स्मॉग का प्रकोप

आज सभी देशों के बड़े शहर स्मॉग नाम के एक नए खतरे का सामना कर रहे हैं। यह नयी बला क्या है? स्मॉग का हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है? आज शोध का विषय बना हुआ है। इस शब्द का प्रयोग 20 वीं सदी से ही हो रहा है। लेकिन इस पर वैज्ञानिकों का ध्यान ज्यादा गया नहीं। अब यह विकराल रूप ले रहा है, इसलिए इस पर बहस शुरू हो गयी है। स्मॉग शब्द अंग्रेजी के दो शब्दों, 'स्मोक' और 'फॉग' से मिलकर बना है। आम तौर पर जब ठंडी हवा किसी भीड़-भाड़ वाली जगह पर पहुंचती है तब स्मॉग बनता है। चूंकि ठंडी हवा भारी होती है इसलिए वह रिहायशी इलाके की गर्म हवा के नीचे एक परत बना लेती है। तब ऐसा लगता है जैसे ठंडी हवा ने पूरे शहर को एक कंबल की तरह लपेट लिया है। गर्म हवा हमेशा ऊपर की ओर उठने की कोशिश करती है। थोड़ी ही देर में वह किसी मर्तबान के ढक्कन की तरह व्यवहार करने लगती है। इससे हवा की इन दोनों गर्म और ठंडी परतों के बीच हरकतें रूक जाती हैं। इसी खास 'उलट पुलट' के कारण स्मॉग बनता है। यही कारण है कि गर्मियों के मुकाबले जाड़ों के मौसम में स्मॉग ज्यादा बनता है। स्मॉग बनने का दूसरा बड़ा कारण प्रदूषण है। आज दुनिया का हर बड़ा शहर वायु प्रदूषण से जूझ रहा है। कहीं उद्योग धंधों और गाड़ियों से निकलने वाला धुंआ तो कहीं चिमनियां। ये सारे हवा में बहुत धुंआ छोड़ रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन काफी समय से चेतावनी देता आ रहा है कि ये सूक्ष्म कण, ओजोन, नाइट्रोजन मोनोऑक्साइड और सल्फर डाई ऑक्साइड लोगों की सेहत पर बुरा असर डाल रहे हैं। लेकिन हमारा ध्यान अभी भी उस ओर ज्यादा नहीं जा रहा है। इन हानिकारक पदार्थों के लिए एक सीमा तय करना जरूरी हो गया है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो बड़े शहरों में लोगों का रहना दूभर हो जाएगा। जाड़ों में जब स्मॉग का मौसम होता है तब गाड़ियों के धुंए से हवा में मिलने वाले ये सूक्ष्म कण बहुत बड़ी समस्या पैदा कर देते हैं। इन सूक्ष्म कणों की मोटाई लगभग 2.5 माइक्रोमीटर होती है। ये कण सांसों के द्वारा हमारे फेफड़ों में घुस जाते हैं। आगे चलकर ये हमारे हृदय को नुकसान पहुंचाते हैं।

कोहरा भी कम नहीं

वैज्ञानिक शोधों से पता चलता है कि जीवाश्म और जैविक ईंधन की खपत बढ़ने से न केवल भारत, बल्कि पूरे ही दक्षिण एशिया में कोहरे का प्रकोप भी बढ़ा है। धुंध और धुएं के बादल आसमान में छाकर कई-कई दिनों तक धूप को रोक देते हैं। अभी तो देश में इस बात का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाना बाकी है कि कोहरे का लोगों के स्वास्थ्य पर कितना प्रतिकूल असर पड़ता है, खासकर श्वास रोग से पीड़ित लोगों पर। बहरहाल, कोहरा यातायात व्यवस्था को तो पंगु कर ही देता है, सड़कों पर रेंगते वाहन अर्थव्यवस्था को भी क्षति पहुंचाते हैं। इस समस्या को गंभीरता से लिया जाना चाहिए। कोहरा प्रायः ठंडी आर्द्र हवा में बनता है और इसका अस्तित्व बादलों जैसा होता है। गर्म हवा की अपेक्षा ठंडी हवा अधिक नमी लेने में सक्षम होती है और वाष्पन के द्वारा यह नमी ग्रहण करती है। ये वह बादल होते हैं जो भूमि के निकट बनते हैं। यानि एक बादल का वह भाग जो भूमि के ऊपर हवा में ठहरा हुआ हो कोहरा नहीं होता बल्कि बादल का वह भाग जो ऊपरी भूमि के संपर्क में आता है, कोहरा कहलाता है। इसके अतिरिक्त कोहरा कई अन्य तरीकों से भी बनता है। लेकिन अधिकांश कोहरे दो श्रेणियों, एडवेक्शन फॉग और रेडिएशन फॉग में बदल जाते हैं। दोनों ही प्रकार में कोहरा आम हवा से अधिक ठंडे होते हैं। ऐसा उसमें भरी हुई नमी के कणों के कारण होता है। एडवेक्शन फॉग तब बनता है जब गर्म हवा का एक विशेष हिस्सा किसी नम प्रदेश के ऊपर पहुंचता है। कई बार कोहरा काफी घना भी होता है जिससे दूर देखने में परेशानी महसूस होती है। समुद्र के किनारे रहने वाले लोग एडवेक्शन फॉग से परिचित होते हैं। रेडिएशन फॉग तब बनता है जब धरती की ऊपरी परत ठंडी होती है। ऐसा प्रायः शाम के समय होता है। धरती की ऊपरी परत ठंडी होने के साथ ही हवा भी ठंडी हो जाती है, जिस कारण कोहरा उपजता है। कोहरा कई पहाड़ी घाटियों में भी छाता है। वहां ऊपरी गर्म हवा ठंडी हवा को जमीन के निकट रखती है। ऐसा कोहरा प्रायः सुबह के समय होता है। सूरज निकलने के बाद ठंडी हवा गर्म होती है और ऊपर उठती है। इसके बाद से कोहरा छटना शुरू हो जाता है। आज हम एक तरह से प्रदूषण के गहरे कोहरे में जी रहे हैं। ये हमारी सांसों को छीन रहा है। सांसों की लम्बाईयां कम हो रही हैं। अगर हम इन कोहरों को नहीं हटायेगें तो वह दिन दूर नहीं कि ये धुंध हमें अपने में विलीन कर लेगी। अभी भी अगर हम नहीं चेते तो अब वो दिन दूर नहीं जब हमें पृथ्वी छोड़ किसी और दूसरे ग्रह पर जाकर रहना होगा।

संपर्क करें:
विजन कुमार पाण्डेय
विभागाध्यक्ष, भौ.वि.एस.पी.वी. कालेज
ग्रेटर नोएडाआर.बी. विला,
मकान न. 159, एलफा-2, ग्रेटर नोएडा
मो.न.: 9450438017
ईमेलः vijankumarpandey@gmail.com